ISSN 0973-8541, HUMANITIES AND DEVELOPMENT, VOL.18, NO.1, JAN-JUNE,2023 /67

''उत्तर वैदिक कालीन सामाजिक परिवर्तन एवं महिलाओं की स्थिति''

*मनोज कुमार चौधरी एवं **प्रो0 उपमा वर्मा
*शोध छात्र–प्राचीन इतिहास, एवं **शोध पर्यवेक्षक
का0सु0 साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या
डॉ0 राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या

शोध–सारांश

जहाँ स्त्रियों की प्रस्थिति को वैदिक काल में स्वर्ण युग कहा जाता था वहीं उत्तर वैदिक काल के पश्चात् स्त्रियों की स्थिति में अवनति काल कहा जा सकता है। विवाह को आवश्यक और धार्मिक कृत्य कहा जाता था। पितृ ऋण से उऋण होने का एक मात्र साधन विवाह, नियोग प्रथम इस काल की विशेषता थी। इस काल में नवीन परम्पराओं का भी उद्‌भव उत्तर वैदिक काल में दिखाई पड़ती है। वर्ण व्यवस्था की स्थापना के साथ ही वर्णों की पृथकता पर भी बल दिया गया था। उत्तर वैदिक काल की सामाजिक स्थिति मूल रूप से निरन्तरता एवं परिवर्तन की प्रक्रिया कहा जा सकता है।

शब्द संकेत– साम्राज्ञी, पापकर्म, निषेध, रजस्वला, अवहेलना, दुर्बल, आटकी, पुनर्विवाह, अलंकृता, कृपण, भिक्षुणी।

शोध–पत्र

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक का इतिहास इस तथ्य की पुष्टि करता है। परिवर्तन की प्रक्रिया में ही समाज को संरचना के साथ ही उसकी कार्यप्रणाली में भी नवाचार जन्म लेता है। इसी प्रक्रिया के माध्यम से प्रस्थिति एवं व्यवहार प्रतिमानों में भी परिवर्तन दिखाई पड़ता है। परिवर्तन ही गतिशीलता का माध्यम होता है इसलिए यह अवश्य भावी प्रक्रिया कही जा सकती है।

भारतीय समाज में स्त्रियों की मर्यादा वैदिक काल में सर्वोच्च रही है वह पुरुषों के ही समकक्ष समझी जाती थी। हिन्दू समाज में महिलाऐं हमेशा धर्म परायण रही हैं। उनमे धर्म के प्रति श्रद्धा, विश्वास, प्रेम हमेशा रहा है। उन्हें विवाह, शिक्षा के साथ सम्पत्ति में भी बराबरी का अधिकार प्राप्त हुआ करता था। वही पुत्री के रूप में पत्नी के रूप में माँ के रूप में भारतीय समाज में सम्मानित रही हैं। समाज में स्त्रियों के प्रति श्रद्धा का भाव निरन्तर बना रहा। परिवार, समुदाय में स्त्रियों के माध्यम से गौरवशाली परम्परा का निर्वहन भी महत्वपूर्ण रहा है।[1]

समाज में महिलाओं का स्थान मात्र भावात्मक आधार पर ही नहीं, बल्कि व्यावहारिक रूप से भी उच्च सम्मान प्रदान किया जाता था। अथर्ववेद इस तथ्य को प्रमाणित करते हुए स्पष्ट करता है कि ''हे नव वधू! तू जिस परिवार में जा रही हो, तुम वहाँ की साम्राज्ञी हो, वहाँ तेरा राज होगा, तेरे श्वसुर, सास, देवर, ननद सभी तुम्हें साम्राज्ञी समझते हुए तुम्हारे साम्राज्य में आनन्दित रहे।[2] वेदों में महिलाओं को घर की साम्राज्ञी कहा गया है।

उत्तर वैदिक काल ईसा से (1000–600 ई0पू0 तक) पश्चात् तक का काल जिसमें महाकाव्यों तथा स्मृतियों की रचना हुई थी। इस काल में सामाजिक परिवर्तन की ओर संकेत स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस काल में महिलाओं की सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में दशा उन्नतशील थी। जहाँ पुरूष वर्ग युद्ध के कार्यों में लगे रहेते थे, वहीं महिलाऐं कृषि कार्यों, युद्ध सामग्रियों के निर्माण के साथ–साथ अन्य सामाजिक कार्यों में संलग्न रहती थी। महाकाव्य अर्थात् महाभारत के अनुशासन पर्व में भीष्म पितामह ने महिलाओं के प्रति उच्च आदर भाव का प्रदर्शन करते हुए कहा है कि ''स्त्री को सदैव पूजनीय मानकर उससे स्नेह का व्यवहार करना आवश्यक है। जहाँ महिलाओं के प्रति आदर किया जाता है वहाँ देवताओं का वास होता है और महिलाओं की अनुपस्थिति में सभी कार्य पुण्य रहित हो जाते हैं।[3] अनुशासन पर्व में ही भीष्म पितामह ने कहा है कि ''स्त्रियाँ स्वभाव से लालची होती है, इनमें लालच को दबाने की क्षमता नहीं होती, स्त्री को सदा किसी न किसी पुरूष के संरक्षण में रहना चाहिए। इस प्रकार भीष्म पितामह ने महिलाओं की कमजोर और असुरक्षित भावना की ओर दृष्टि आकर्षित किया है। स्त्रियाँ स्वभावगत दो प्रकार की होती है। प्रथम–साध्वी तथा द्वितीय–असाध्वी। साध्वी महिलाऐं इस पृथ्वी की माँ और संरक्षिका के समान है जबकि असाध्वी स्त्रियाँ अपने पापपूर्ण व्यवहार से कहीं भी दृष्टिगत हो सकती हैं। इससे यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि उत्तर वैदिक काल की महिलाऐं अबला की कोटि में प्रवेश कर चुकी थी तथा इनके समक्ष सामाजिक सुरक्षा का प्रश्न स्थापित हो चुका था। ऐसा प्रतीत हीता है कि इस काल मे कुछ महिलाऐं अवश्य ही पापकर्म में लीन हो चुकी थी। महिलाओं के भीतर अवश्य ही प्राकृतिक स्वभाव एवं आदर्श में विचलन के तत्व दृष्टिगत होते हैं।

इस काल में भारतीय महिलाओं के सामाजिक और कर्मकाण्डीय अधिकार अवश्य ही सुरक्षित थे उन्हें स्वयं के जीवन साथी के चुनाव की भी पूर्ण स्वतंत्रता थी। वेदों के अध्ययन की भी छूट थी किन्तु उच्च प्रस्थिति प्राप्त परिवारों की लड़कियों को ही शिक्षा का अधिकार रह गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि आलोच्य काल में अब कहीं न कहीं महिलाओं की प्रस्थिति में गिरावट का अनुभव किया जाने लगा था। किन्तु कमोवेश अभी भी महिलाओं की परिस्थितियाँ सन्तोषजनक थी।

उत्तर वैदिक काल की अति महत्वपूर्ण स्थिति बौद्ध एवं जैन धर्म के विकास का आरम्भ कहा जा सकता है। तत्कालीन समय में बौद्ध धर्म मे भी महिलाओं को अति सम्मानित पद प्रदान किये जाने लगे थे। इस काल में स्त्रियाँ 'भिक्षुणी' बनकर सम्पूर्ण जीवन ब्रह्मचर्य के सहारे व्यतीत कर लेती थीं। ऐसा परिलक्षित होता है कि इसी समय से महिलाओं की प्रस्थिति में गिरावट आना प्रारम्भ हो चुका था। महिलाओं की प्रस्थिति मे गिरावट आना प्रारम्भ हो चुका था। महिलाओं को पद, प्रतिष्ठा एवं सम्मान मे कमी को अल्तेकर महोदय ईसा के 1000 पूर्व से 500 ईसा पश्चात् तक स्वीकार किया है।[5]

महिलाओं के सम्मान में कमी का सर्वोत्तम उदाहरण मनुस्मृति से प्राप्त होता है। महिलाओं के लिए वेदों का अध्ययन करने तथा यज्ञ करने पर पूर्ण रूप से प्रतिबन्ध था। विधवा विवाह पर भी निषेध लग चुका था। स्त्रियों का अब एकमात्र धर्म पारिवारिक कर्त्तव्यों की पूर्ति मात्र रह गया था। कन्या की रजस्वला होने के पूर्व विवाह का प्रावधान किया जा चुका था। भारतीय समाज मे बाल–विवाह प्रोत्साहन का यह सबसे बड़ा उदाहरण माना जा सकता है।

तत्कालीन समाज में पुत्र की अपेक्षा पुत्रियों की स्थिति भी कमजोर अथवा दीन–हीन थी। अथर्व वेद में पुत्री के जन्म पर प्रसन्नता का अनुभव नहीं किया जाता था।[6] ऐतरेय ब्राह्मण में पुत्री को कृपण कहा जाता था।[7] उत्तर वैदिक काल में लड़कियाँ एकदम उपेक्षित भी नहीं थी। वृहदारण्यक उपनिषद मे धीमती कन्या के जन्म के लिए अनेकों विधि–विधान का प्रावधान किया जाता था।[8]

छान्दोग्य उपनिषद एक उपस्थित ब्राह्मण का उल्लेख करता है जो कुरूदेश में अपनी 'आटकी' पत्नी के साथ निवास करता था।[9] संकट ने 'आटकी' का आशय अल्पवयस्का (अनुपजात पयोधरा) स्त्री बताया है। परन्तु इस 'आटवी' के अर्थ को अधिकांश विद्वान स्वीकार नहीं करते। अथर्व वेद में ऐसी कन्याओं का भी उल्लेख मिलता है जो सम्पूर्ण जीवन अपनी माता–पिता के साथ अविवाहित रहते हुए व्यतीत करती थी।[10] परन्तु सामान्य रूप में अविवाहित रहने की प्रथा नहीं थी। अविवाहित पुरूष को यज्ञ का भी अधिकार नहीं था।[11] बिना स्त्री के वह स्वर्ग नहीं जा सकता था।[12] बिना स्त्री के मनुष्य स्वयं अपूर्ण है स्त्री ही उसे पूर्ण बनाती है।[13] यज्ञ के लिए पुत्र की आवश्यकता थी और पुत्र प्राप्ति हेतु विवाह की आवश्यकता थी।[4]

उत्तर वैदिक काल में विधवा स्त्री का भी पुनर्विवाह सम्भव था। तैतरीय संहिता में 'देघिषण्य' शब्द का प्रयोग मिलता है। इसका आशय था 'विधवा पुत्र' होता है। पुत्र प्राप्ति के लिए विधवा विवाह कर सकती थी।[15] इस काल में कहीं भी सती प्रथा के प्रचलन का प्रमाण नहीं मिलता है। इस काल में पर्दा प्रथा का भी प्रचलन नहीं था। अथर्व वेद में अलंकृता नारी का सभा में जाने का उल्लेख मिलता है। शिक्षित स्त्री–पुरूष के लिए विवाह को यजुर्वेद उचित बताता है।[16] अथर्व वेद का कथन है कि ब्रह्मचर्य द्वारा कन्य पति को प्राप्त करती है।[17] इससे स्पष्ट विदित होता है कि पुत्र की भांति पुत्रियों को भी ब्रह्मचर्य में रहकर शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती थी।

धर्मशास्त्र काल ईसा के पश्चात तीसरी से ग्यारहवीं शताब्दी के बीच का काम माना जाता है। इस काल में वैदिक सम्बन्ध ढीले पड़ने लगे थे और वैदिक नियमों एवं मान्यताओं की अवहेलना होने लगी थी। वैदिक नियमों के ह्रास और मनु की अपनी सामाजिक व्यवस्था के कारण महिलाओं की सामाजिक प्रस्थिति में गिरावट आने लगी। वस्तुतः धर्मशास्त्र काल सामाजिक और धार्मिक संकीर्णता का काल कहा जा सकता है। महिलाओं के पतन में इस काल की सामाजिक धार्मिक दशाएं उत्तरदायी रही हैं। जिनके परिणाम स्वरूप महिलाऐं विशुद्ध रूप से पुरूषों पर निर्भर रहने के लिए विवश होने लगी। इन्हें असहाय, अनाथ और कमजोर समझा जाने लगा। धार्मिक कृत्य के रूप में महिलाओं के लिए विवाह को एकमात्र विकल्प के रूप में सामाजिक मान्यता मिलने लगी। सम्पत्ति के उत्तराधिकार से इन्हें वंचित कर दिया गया। अतः इनकी आर्थिक प्रस्थिति बड़ी ही दयनीय हो गयी। इन्हें शारीरिक और मानसिक रूप से अत्यन्त दुर्बल सिद्ध कर दिया गया। बाल विवाह का प्रचलन शुरू हो गया। अधिकांश कन्याओं का विवाह 8–10 वर्ष की अवस्था में होना शुरू हुआ। कुलीनता जैसी सीमित सामाजिक विचारधारा के कारण बहुपत्नी विवाह का प्रचलन इस काल की विशेषता के रूप में उभरकर सामने आने लगा। लोगों में कई अवैध महिलाओं को एक साथ रखने की इच्छा जागृत हुई और रखैल प्रथा का आरम्भ हुआ। अपनी पारिवारिक पवित्रता को बनाये रखने की दृष्टि से उच्च एवं सम्भ्रान्त परिवारों ने विधवा पुनर्विवाह की प्रथा को तिरस्कृत करने का प्रयास किया। महिलाओं के लिए कठोर नियम बनाए गये और उन्हें केवल अपने पति के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित रहने की शिक्षा दी जाने लगी। महिलाओं की अस्मिता संदेह की दृष्टि से देखी जाने लगी। इस संदर्भ में मनु ने महिलाओं के पूर्ण संरक्षण के लिए नियम का उल्लेख किया कि ''महिलाओं को बाल्यावस्था में अपने माता–पिता का संरक्षण में युवावस्था में अपने पति के संरक्षण में और वृद्धावस्था में अपने बेटे के संरक्षण में ही रहना चाहिए।[18] इतना ही नहीं वैदिक काल के बाद के साहित्य से कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं जैसे अनुशासन पर्व में कहा गया है कि स्त्रियों से बढ़कर कोई दुष्ट नहीं है, वे विष, सूर्य तथा अग्नि के समान है। सैकड़ों, हजारों में कहीं एक स्त्री पतिव्रता मिलेगी। रामायण में भी लिखा है कि स्त्रियाँ धर्म भ्रष्ट, चंचल तथा विरक्ति उत्पन्न करने वाली हैं। स्त्रियों के प्रति इस प्रकार का विचार मध्यकाल में महिलाओं की स्थिति और अधिक बढ़ गयी थी।

मध्यकाल में महिलाओं की स्थिति और अधिक गिरी हुई थी। परिवार मे कन्याओं का जन्म अशुभ माना जाता था। कन्या हत्या तक का प्रचलन आरम्भ हो गया। बाल विवाह प्रचलित था। विधवा विवाह अमान्य था। पति की मृत्यु बे बाद पत्नी को आग मे जलकर मरना पड़ता था। जिसे सती प्रथा के नाम से जाना जाता है। विधवाओं को एक सामान्य स्त्री की भांति जीवन व्यतीत करने का अधिकार प्राप्त नहीं था। पर्दा प्रथम का प्रचलन था स्त्रियां प्रायः घरों में ही रहती थी उन्हें घर के बाहर जाने का अधिकार प्राप्त नहीं था।

संदर्भ–सूची

1. मिश्र, जयशंकरः प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, पृ 383
2. सम्राज्येधि श्वसुरेषु सम्राज्युत देवृषु।
   ननान्दुः सम्राज्येधि सम्राज्युत श्वक्ष्णुणः।। अथर्व वेद, 14/1/44
3. महाभारत, अनुशासन पर्व, 46/5
4. वही, 43/19–21
5. Altekar, A.S.; The Position of Women in Hindu Civilization; M.L. Banarsi Das Publishers, Banaras.
6. अथर्ववेद, 6/2/3
7. ऐतरेय ब्राह्मण, 33/1
8. वृहदोपनिषद, 6/4/27
9. छान्दोग्य उपनिषद, 1/10/1
10. अथर्व वेद, 1/14/3
11. शतपथ ब्राह्मण, 5/1/6/10
12. ऐतरेय ब्राह्मण, 1/2/5
13. शतपथ ब्राह्मण, 5/2/1/10
14. ऐतरेय ब्राह्मण, 33/1
15. अथर्व वेद, 6/5/27–29
16. यजुर्वेद, 8/1
17. अथर्ववेद, 11/5/18
18. पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
    रक्षन्ति स्थविरे पुत्राः न स्त्री स्वातन्यनर्हति।। मनुस्मृति।